International Journal of Jyotish Research: 2023; 8(1): 25-29

International Journal of Jyotish Research
(वेदचक्षु)

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2023; 8(1): 25-29
© 2023 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 15-01-2023
Accepted: 21-02-2023

डा0 तृप्ति दहरी
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, भारती कॉलेज (NCWEB), दिल्ली, भारत

Correspondence
डा0 तृप्ति दहरी
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, भारती कॉलेज (NCWEB), दिल्ली, भारत

ज्योतिषशास्त्र में कर्ण रोग से सम्बन्धित विभिन्न योग

डा0 तृप्ति दहरी

सारांश
मानव शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार जिन से मनुष्य किसी भी प्रकार का दुख प्राप्त करता है उसको रोग कहते हैं इन रोगों की उत्पत्ति के कारण लक्षण भेद एवं चिकित्सा विधि इत्यादि में आयुर्वेद एवं ज्योतिष में काफी समानता है सुश्रुत संहिता में भगवान धन्वंतरी ने भी रोगी की चिकित्सा शुरू करने से पहले वैद्य को उसकी आयु की भली.भांति परीक्षा कर लेने का निर्देश दिया है। ज्योतिष शास्त्र में भी मनुष्य के रोगों की उत्पत्ति के अनेक कारण बताए गए हैं ग्रहों के दृष्टिपात ग्रहों के स्थान युति एवं दुष्ट स्थानों पर होना कई प्रकार के कारण रोगो की उत्पत्ति के होते हैं जिन से मनुष्य अलग.अलग प्रकार के रोगों को प्राप्त करता है प्रस्तुत शोध पत्र में कर्ण रोग के बारे में विचार किया गया है। यदि किसी व्यक्ति की आयु के बारे में विचार करना है तब भी ज्योतिष शास्त्र के आधार पर जातक की आयु कितनी है उसका वर्णन किया जा सकता है। आयुर्वेद में भी जब मनुष्य ऋतु के अनुसार आहार.विहार करता है सदवृत्ति का सेवन करता हूं एवं रोगोत्पत्ति का मौसम भी ना हो और अचानक रोग उत्पन्न हो जाए तो उस रोग को कर्मजन्य माना जाता है। कान रोग भी दो प्रकार का होता है सहजबाधिरापन और जन्मोत्तरबधिरापन। प्रस्तुत शोध पत्र में ज्योतिष शास्त्र में कर्ण रोग के कारणए कम सुनाई देने के योग ए कान कटने के योगए कान में दर्द एमवाद बहना इत्यादि योग और उनके उपचारों का वर्णन किया गया है जो निश्चित रूप से सभी के लिए लाभप्रद है।

प्रस्तावना
मानव शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे मनुष्य किसी भी प्रकार का दुःख मिलता है, उसको रोग कहते हैं। इन रोगों की उत्पत्ति के कारण लक्षण भेद एवं चिकित्सा विधि से आयुर्वेद एवं ज्योतिष में काफी समानता है। सुश्रुतसंहिता में भगवान धन्वन्तरि ने सुश्रुत से कहा कि रोगी की चिकित्सा शुरू करने से पहले वैद्य को उसकी आयु की भलीभांति परीक्षा कर लेनी चाहिए।

शास्त्र में भी फलादेश से पूर्व आयु विचार पर बल दिया जाता है, यथा–

आयुः पूर्व परीक्षेत् पश्च्चाल्लक्षणमादिशेत।
अनायुषन्तु मर्त्यानां लक्षणैः किं प्रयोजनम्।।
आयुरेव विशेषेण प्रथमं चिन्त्यतेऽधुना।।
स्वस्थमुदिश्य वा प्रश्न एष वातुरमित्यम्।।
विवेको बिहगैः कार्य इति शास्त्रान्तरोदितम्।

रोगीत्पति के कारण – आयुर्वेद में कर्मप्रकोप एवं दोषप्रकोप को रोगोत्पति का कारण माना गया है कर्मजा व्याध्यः केचिद् दोषजाः सन्ति चापरे। सामान्यतया गलत आहार एवं विहार से रोग उत्पन्न होते हैं।
किन्तु जब मनुष्य ऋतु के अनुसार आहार विहार करता हो, सद्वृति का सेवन करता हो एवं रोगोत्पत्ति का मौसम भी न हो, और अचानक रोग उत्पन्न हो जाए तो उस रोग को कर्मजन्य मानना चाहिए। वास्तविकता यह है कि आहरि–विहार भी एक प्रकार का कर्म ही है जिससे मिथ्यारोग से रोग उत्पन्न होते हैं।
दर्शनशास्त्र में कर्म के तीन भेद माने गये हैं– 1. संचित, 2 प्रारब्ध, 3. क्रियमाण आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म माना गया है, वह संचित कर्म है। जिसके एक भाग को प्रारब्ध या दैव कहा गया है। तथा मिथ्या आहार–विहार आदि क्रियमाण कर्म है। इस प्रकार कर्म प्रकोप एवं दोष प्रकोप दोनों के मूल में अशुभ या अनुचित कर्म ही एक मात्र हेतु दिखाई देता है। इसलिए ज्योतिष शास्त्र के आचार्यो ने मनुष्य के पूर्वार्जित कर्म या जन्मान्तर में विहित पाप को रोग का कारण माना है।

यथा – जन्मान्तर्कृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।

त्रिशठाचार्य का मत है कि उदररोग, गुदारोग, उन्माद, अपस्मार, पंगुता, कर्णरोग, बागदोष, प्रमेह, भगन्दर, प्रद्र, वायु, विकार, कुष्ठ, क्षय, इत्यादि रोग पूर्वजन्मार्जित पापों का फल है। प्राचीन भारत मेज्योतिषशास्त्र के मनीषी आचार्यों ने ज्योतिषशास्त्र के सामान्य नियमों द्वारा मनुष्य के स्वास्थ्य तथा उसमें उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार काफी गम्भीरता पूर्वक किया है। आचार्य वराहमिहिर ने अपने वृहज्जातक में अपने पूर्ववर्ती मय, यवन, मणित्थ, शक्ति, जीवशर्मा एवं सत्त्याचार्य प्रभूति मनीषी विद्वानों का नाम लेकर बतलाया है कि इन विद्वानो ने मनुष्य की आयु का यथार्थरूप से ज्ञान करने के लिए अनेक उपयोगी नियमों का प्रतिपादन किया है।

पूर्वाजित कर्मो के प्रभाववश उत्पन्न होने वाले रोगों का विचार होराग्रन्थों में प्रतिपादित ग्रहयोगों के आधार पर किया गया है, सूर्यादि ग्रह मनुष्य के शरीर में अंग धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब ग्रह अनिष्ट स्थानों में स्थिर होते हैं, अरिष्ट प्रभावयुक्त होता है, तब वह शरीर के अंग धातु एवं दोष आदि में रोगों की सूचना देते हैं तथा शुभ स्थानों में हो तो स्वस्थता सूचक होते है। इसलिए ज्योतिषशास्त्र में रोगों का विचार ग्रह योगों के आधार पर किया जाता है।

ज्योतिष शास्त्र में कुण्डली से जातक के विभिन्न शरीर के अंगो का विचार किया जाता है उक्त कुण्डली द्वारा जिसे स्पष्ट किया जा सकता है।

भावों का शारीरिक अंगों पर अधिपत्य

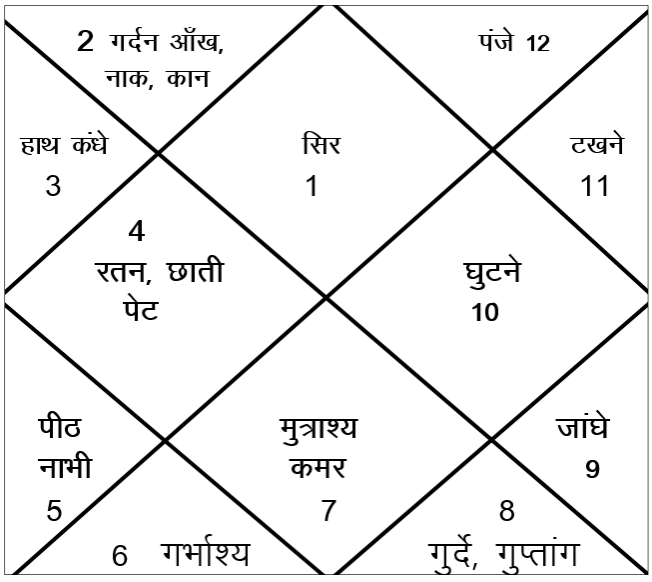

कर्णशूल–(कान का दर्द Pain in the ear otalgia)

समीरणः श्रौत्रगतोऽन्यथा चरन् समन्वतः शूलन्ततः शूलमतीव कर्णयोः।
करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुराचरः।।

स्वकीय कारणों से प्रकुपित दोष और इन दोषों से आवृत एवं प्रतिलोमगामी वायु कर्णकुहर में जाकर कर्णशूल उत्पन्न करता है। यह व्याधि कष्ट साध्य होती है। कुछ आचार्यो ने इसे असाध्य भी माना है। आचार्य विदेह का कहना है कि व्याधि असाध्य नहीं है, परन्तु कर्णशूल के उपद्रव बहुत ही भयंकर परिणाम् कारक है।

मूर्छा दाहां ज्वरः कासो हकलासी वमधुस्तथा।
उपद्रवाः कर्णशूले भवित ते मरिष्यतः।।

वैज्ञानिक इस रोग को टिनिटस कहते हैं, कर्णनाद (प्रणाद) कान बजना–कान में हवा की सनासनाहट होना,

कपास्त्रोत स्थित वाते श्रृणोति विविधान् स्वरान्।
भेरीमृदङगशंखानां कर्णनादः स उत्यते।।
यदा शब्दवहं वायुः स्त्रोत आयृत्य तिष्ठति,
शुद्धः स्लेष्मान्वितो वाऽपि वाधिर्य तेन जायते।

कर्णस्रोत में वायु प्रवेश होकर वहीं पर स्थिति हो जाती है, तब वहाँ विविध प्रकार की सनसनाहट होने लगती है। भेरी–मृदंग अथवा शंख आदि के स्वरों के समान आवाजें रहती है। जब शब्द्वाही नाड़ी (audistoryneler) वायु अथवा श्लेष्मा से आवृत हो जाती है। और इस स्थिति के परिमाण स्वरूप शब्द स्रोत अवरूद्ध हो जाता है। तब वाधिर्य वहरापन (deafness) रोग होता है। (Diseases of the ear)

कर्ण रोग के लक्षण एवं प्रकार–कर्ण कीर्यते क्षिप्यते शब्दी वायुना यत्र। किरति शब्दग्रहणेन मानसि सुखं क्षिपति ददातीत्यर्थः।

कर्णशूल, कर्णनाद, (प्रणाद) वाधिर्य, कर्णक्ष्वेड, कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णगूथ कृमिकर्ण, प्रतीनाह, कर्णविद्रिद्य (दोषज) कर्णविद्रधि (दोषज) कर्णपाक, पूतिकर्ण, कर्णाशं (दोषानुसार चार प्रकार) कणार्बुद दोषानुसार प्रकार कर्णशोफ दोषनुसार प्रकार। वैसे मुख्यतः कर्णरोग 15 प्रकार के हैं परन्तु कणविद्रधि के प्रकार 2 कर्णार्श, 4 प्रकार कर्ण रोग 28 प्रकार के होते हैं इसके अलावा आचार्य सुश्रुत ने विशेष नामों के साथ और गिनाए हैं। यथा परिपोटक, उत्पात, अन्मथ, दुःखवर्धन परिलेह। वाधिर्य रोग प्रायः दो प्रकार का होता ह। (1) सहज वाधीर्य (खल्की या पैदायशी बहरापन –congrntital deafness)

(11) जन्मोत्तर वाधिर्य (Sardifty) इन दो प्रकारों के अलावा एक प्रकार का ऐसा बहिरापन भी होता है, जिसमें रोगी के साथ जोर से बोलने पर सुनाई देता है। इसे यूनानी में 'गिराती गोश' कहते है, और कर्णनाड़ी के आधार पर भी इसके दो भेद माने जाते हैं प्रथम प्रकार है, नाडी विकृति जन्य और दूसरा प्रकार है अन्य कारण जन्य।

कर्णसंस्राव (कान बहना–फर्हा गोश (Discharges from the ear ontarriae)

शिरोऽभिधातादथवा निमज्जतो जले प्रपाकादथवाऽपि त्रिद्रधेः
स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिशोऽर्दितः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तिताः।।

सिर पर किसी भी प्रकार के आघात, जल में डूब जाने के कारणस्वरुप, कर्ण विद्रधि के पक जाने से, वातज वेदना के साथ कान में मुवाद का आते रहना कर्ण संस्राव, अथवा कर्णस्राव कहलाता है।

ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार की दृष्टि से भावों का महत्त्व अधिक है। क्योंकि द्वादश भावों में से प्रथमतः षष्ठ, अष्टम, द्वादश भावों का रोग विचार से प्रत्यक्षतः सम्बन्ध है तथा द्वितीय एवं सप्तम भाव का मारक भाव होने के नाते स्वास्थ्य से सम्बन्ध है। इस प्रकार ये छः भवा रोग विचार में एक अहं भूमिका प्रस्तुत करते हैं। षष्ठभाव की रिपु संज्ञा है। यह जातक के शुत्रओं का प्रतिनिधत्व करता है। चूँकि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए रोग प्रबलतम शत्रु होते हैं। अतः इस भाव से मख्य रूप से मनुष्य के जीवन में होने वाले रोगों का विचार किया जाता है।

अष्टम भाव ''आयु'' का या ''मृत्यु'' संज्ञक है। आयु एवं मृत्यु एक दूसरे से संबंधित होते हैं। आयु का पूरा होना ही मृत्यु है। अतः आयु समाप्त होते ही मृत्यु हो जाती है। या मृत्यु होते ही आयु समाप्त हो जाती है। मृत्यु किसी न किसी कारण रोग विकार, याद दुर्घटना से होती है। रोगों के साध्य–असाध्य होने में आयु एक महत्त्व पूर्ण कारण है। जब तक आयु है। तब तक कोई रोग

असाध्य नहीं, और आयु के सामप्त होते ही छोटा सा रोग भी असाध्य होकर मृत्यु का कारण बन जाता है। इसलिए रोगों के साध्य एवं असाध्य होने का विचार भी इस भाव से होता है।

द्वादश भाव को ''व्यय'' कहते है। व्यय का अर्थ है– खर्च या हानि होना। चूंकि प्रत्येक रोग शारीरिक शक्ति अथवा जीवन शक्ति की हानि करने वाला होता है। इसलिए इस भाव से भी रोगों का विचार किया जाता है।

कुण्डली में अष्टम तथा अष्टम से अष्टम अर्थात् तृतीय ये दोनों भाव आयु के भाव माने गये हैं। अर्थात् अष्टम तथा तृतीय भाव से आयु का विचार किया जाता है तथा जिस प्रकार कुण्डली में बारहवाँ भाव व्यय कहा जाता है, उसी प्रकार अष्टम एवं तृतीय भावों से बारहवाँ भाव–अर्थात् सप्तम एवं द्वितीय भाव, आयु दो व्यय के द्वारा होते हैं आयु का व्यय ही मृत्यु ही है। यही कारण है, कि इन भावों से मृत्यु तुल्य कष्टों का विचार किया जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुण्डली के 12 भावों में से प्रथम, षष्ठ अष्टम, द्वादश, द्वितीय सप्तम इन 6 भावों का रोग विचार से संबंध है। अतः रोगों का विचार करते समय इन भावों का भली भाँति विचार करना चाहिये।

कर्णरोग का विचार ज्योतिष शास्त्र में तृतीय एवं एकादश भाव से किया जाता है। जन्मांग में जब तृतीयेश, एकादशेश का षष्ठेश, अष्टमेश से संबंध बनेगा तो रोग की संभावना बनती है।

ज्योतिष शास्त्र में कर्णरोग प्रधानतया दो प्रकार के होते हैं– 1. जन्मजात 2. आगुन्तुक। जन्म से ही वहिरापन होना जन्मजात कर्णरोग है। जन्मोपरान्त वहिरापन होना कम सुनाई देना, कान काटना, कान में दर्द होना या मवाद पड़ना आदि सब आगुन्तुक कर्ण रोग होते हैं।

कान का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह शनि होता है। बुध, शुक्र उसके सहायक ग्रह माने गये हैं, कुण्डली में तृतीय एवं एकादश भाव दोनों कानों का प्रतिनिधित्व करते हैं। तथा पंचम एवं नवम भाव उसके सहायक होते हैं। इस प्रकार शनि बुध एवं शुक्र इन तीनों ग्रह तथा द्वितीय तृतीय पंचम, नवम एवं एकादश भावों एवं उनके स्वामियों पर पाप प्रभाव से, युक्त ग्रह एवं उक्त भावों के स्वामियों के दुःस्थान में स्थित होने से अथवा इन सबके पापन्वित या निर्बल होने से कर्ण रोग होते हैं।

बहिरापन एवं उसके योग–कानों से सुनाई पड़ने की शक्ति का नष्ट हो जाना बहिरापन कहलाता है। कान के रोगों में बहिरापन मुख्य है। यह जन्मजात भी होता है। और जन्म के बाद भी। जन्मजात वधिरता या जन्मोपरांत वधिरता।

ज्योतिषशास्त्र में वधिरता सूचक अनेक योग बतलाये गये हैं।

1) तृतीयेश पापग्रह एवं किसी शुष्क ग्रह सूर्य, मंगल, शनि के साथ हो।
2) तृतीयेश क्रूर ग्रह के साथ अपने शुत्र की राशि में हो।
3) शनि से चतुर्थ में बुध हो तथा षष्ठेश त्रिक स्थान में हो।
4) पूर्ण चन्द्रमा एवं शुक्र अपने शुत्र के साथ हो।
5) षष्ठास्थान में बुध हो दशम में शुक्र तथा रात्रि जन्म हो।
6) बुध एवं षष्ठेश पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
7) तृतीयः एकादश एवं त्रिकोण स्थानों में पापग्रह हो तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।
8) षष्ठेश त्रिकस्थान में हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो।

कम सुनाई देने के योग

कम सुनाई देना भी एक प्रकार का रोग है। यह किसी रोग के प्रभाववश या वृद्धावस्था के कारण होता हे। ज्योतिषशास्त्र में इसके कुछ योग बतलाये गये हैं जो इस प्रकार हैं –

1) बुध के साथ शुक्र द्वादश स्थान में हो तो बाये कान में कम सुनाई देता है।
2) नवम, एकादश, तृतीय एवं पंचम भाव में पापग्रह हो तो उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।
3) द्वितीयेश एवं मंगल ये दोनों लग्न में हो।
4) मेष, वृष एवं कर्क राशियों को छोड़कर किसी भी अन्य राशि लग्न में चन्द्रमा हो।

कान कटने के योग

कुछ लोगों के कान लड़ाई–झगड़े या दुघर्टना में कट जाते हैं। कटने की यह घटना उन लोगों के जीवन में घटती है, जिनकी कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो।

1) सूर्य, शनि एवं चन्द्रमा तृतीय पंचम, सप्तम या नवम स्थान में हो और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।
2) चन्द्रमा से सप्तम में शनि हो तथा शुक्र एवं सूर्य लग्न में हो।
3) नीच राशि में राहु के साथ शुक्र हो।
4) कारकांश में केतु हो तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो।

कान में दर्द, मवाद पड़ना, बहना आदि के योग

कान में दर्द होना, मवाद सड़ जाना एवं बहना आदि कर्णरोग कहलाते हैं इन सब कर्ण रोगों का विचार मुख्यतः तृतीय एवं एकादश भाव से भी किया जाता है।

1) मंगल एवं गुलिक तृतीय भाव में हो तो कान में दर्द होता है।
2) तृतीय स्थान में पापग्रह हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो कान में दर्द होता है।
3) तृतीयेश क्रूर ग्रहों की षष्ठयांश में हो तो कान सड़ जाता है।
4) लग्न में धनेश एवं मंगल हो।
5) तृतीयेश की राशि का स्वामी जिस राशि तथा नवांश में हो उनका स्वामी केन्द्र में हो और वह पाप ग्रह से दृष्ट या युत हो
6) द्वितीय या द्वादश स्थान में शुक्र या मंगल हो।
7) लाभेश पाप ग्रहों से युत एवं दृष्ट हो।
8) तृतीय भावा में गुलिक के षष्ठयांश में मंगल हो।

ज्योतिष शास्त्र में कर्ण रोग के कारण

सोत्थे प्रेतपुरीपांशे भौमे कर्णरोगः
सोत्थे गुलिकार्कजौ शुभदृग्धीनौ कर्णरोगः
सोत्थे कूरपष्ठयंशे कर्णरोगः
अंशे केतौ पापदृष्टे कर्णच्छेदः कर्णरोगोवा।

यदि मंगल प्रेत पुरीष संज्ञक होकर तृतीय स्थान में स्थित हो तो कर्ण रोग होता है। यदि तृतीय स्थान में शनि और गुलिक की युति हो और यह स्थान किसी शुभग्रह से दृष्ट हो तो कर्णरोग होते हैं। यदि कारकांश कुण्डलीके लग्न स्थान में केतु स्थित हो और यह स्थान किसी शुभग्रह से दृष्ट हो तो कर्णरोग होते हैं।

यदि कारकांश कुण्डलीके लग्न स्थान में केतु स्थित हो और उसे पापग्रह देख रहा हो तो कर्ण रोग होते हैं।

हंसाकेचन्द्रास्त्रिसुतास्तधर्मगाः सौमयाऽदृष्टयुता कर्णछेदः
चन्द्रादस्ते मन्दे शुक्रार्कौ लग्ने कर्णच्छेदः
नीचे भृगौ फणियुते कर्णव्छेदः।

यदि 3/5/7 और नवम स्थान में सूर्य, शनि स्थित हो और इन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो कर्णच्छेद होता है।

कर्ण रोग का उपचार

ज्योतिशास्त्र में रोगोपचार हेतु रोगकारक ग्रहों के निमित जप होम, मणिरत्नादि तथा ग्रहों की औषधिस्नान, दानादि किये जाते हैं।

कपित्थमातुलिङ्गाक्षभृङबेररसैः शुभैः।
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्ण कर्णशूलोपशान्तये।।

1) कपित्य (कैथ–कवीर) मातुलूंग (विजौरानीवूं) अम्ल (कांजी) श्रृङगबेर (अदरख) इन चार द्रव्यों का रस निकाल कर थोड़ा गरम करके कान में डालते रहने से कर्णशूल रोग नष्ट होता है।
2) श्रृङगबेर (अदरख) मधुर (मुलेठी) सैंधव (सैंधानमक) तैल (तिलतैल) 5 तौला तिल में 6–6 माशा शेष द्रव्यों को डालकर तैल को भलीभाँति गर्म करके छान लें। इन छान तैल को कान में डालने से कर्णशूल नष्टहोता है।
3) लशुन (लहसून) अर्द्रक शिग्रू (सहिजन) मूलक (मूली) कदली (केला) की जड़ का रस, तुलसी उपर्युक्त 6 द्रव्यों का आधा–आधा तोला स्वरस निकाल कर थोड़ा गरम करके कान में डालने से कर्णशूल नष्ट होता है।

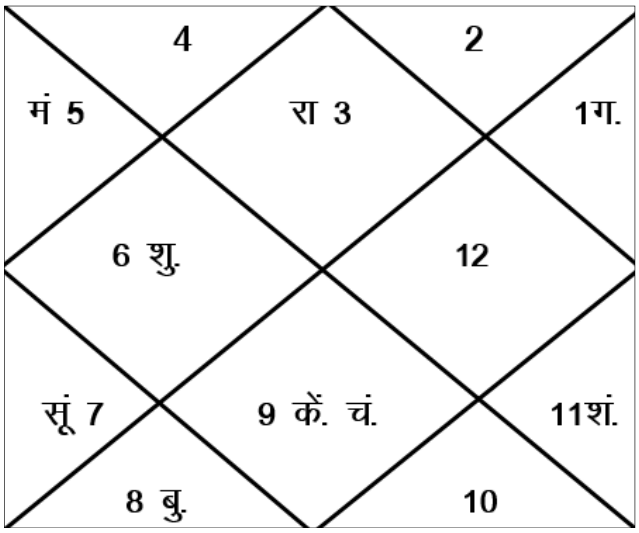

1) कर्ण रोग प्रायोगिक विश्लेषण

जन्मतिथि – 9/11/1964
जन्मस्थान 20/14 रात्रि
जन्मस्थान – होशियारपुर (पंजाब)

प्रस्तुत जन्माङग ऐसे जातक की है, जिसको कान का रोग है, (कर्णसंस्राव) स्राव)
कुण्डली में तृतीय भाव में मंगल जोकि रोगेश व एकादशेश है, जिसके कारण जातक को कर्ण वेदना (पीड़ा) व कर्ण होता है।
दूसरा योग पंचम में तृतीयेश सूर्य क्रूर ग्रह है। नवम में शनि की दृष्टि एकादश भाव पर है, जोकि उसकी नीच राशि है, शनि अष्टमेश भी है।
तीसरा योग सप्तम में केतु और चन्द्रमा होने से कर्णस्राव व कर्णशूल होता है। इस बात की पुष्टि जातक परिजात में इस प्रकार है।

नवमायतृतीयधीयुता न च सौम्यैरशुभा निरीक्षिताः
नियमाच्छ्वणोपद्यातदा रदवैकृत्येराश्च सप्तमे।।

अर्थात् नवम् एकादश, तृतीय, पंचम स्थान में पापग्रह हो उन्हें शुभग्रह न देखते हो तो जातक अवश्य ही कणरोग से पीड़ित होता है। प्रस्तुत जन्मांग में बृहस्पति तृतीय पंचम सप्तम को देख रहा है, लेकिन आकाशतत्व होने के कारण तथा षष्ठेश व एकादशेश मंगल के घर में होने से स्वयं एकादश भाव से कर्ण का विचार किया जाता है इसलिए कर्ण रोग की पुष्टि होती है।

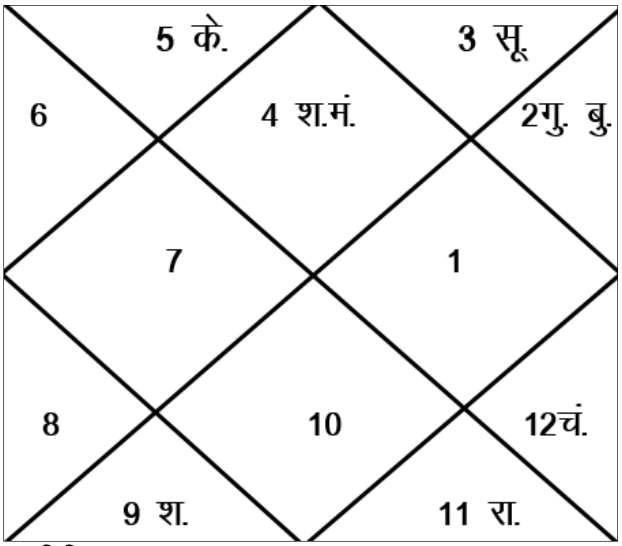

जन्मतिथि – 27/06/1980
जन्म समय 07
जन्मस्थान – लुधियाना (पंजाब)

प्रस्तुत जन्मांग में षष्ठेश गुरू तृतीयेश बुध के साथ एकादश में बैठा है, जिसके फलस्वरूप जातक को कर्णरोग है। तृतीय एवं एकादश कान का विचार किया जाता है। षष्ठेश बृहस्पति रोगेश होने से रोग कारक तथा एकादश भाव का कारक भी है, जिसके फल स्वरूप अशुभ हैं।

दूसरा योग शनि सप्तमेश अष्टमेश होकर रोग भाव में बैठा, वात कारक शनि षष्ठ भाव में विद्यमान होने से जातक की बात कुपित होने के कारण कान के पर्दे में गड़बड़ी है, जिसके कारण जातक को कम सुनाई देता है, जोकि वात के कारण है। तृतीययोग द्वितीयेश सूर्य द्वादश भाव में बैठा है, जातक को नेत्र विकार भी है, द्वितीय द्वादश भाव से नेत्र का विचार किया जाता है, तथा सूर्य स्वयं नेत्रज्योति कारक है।

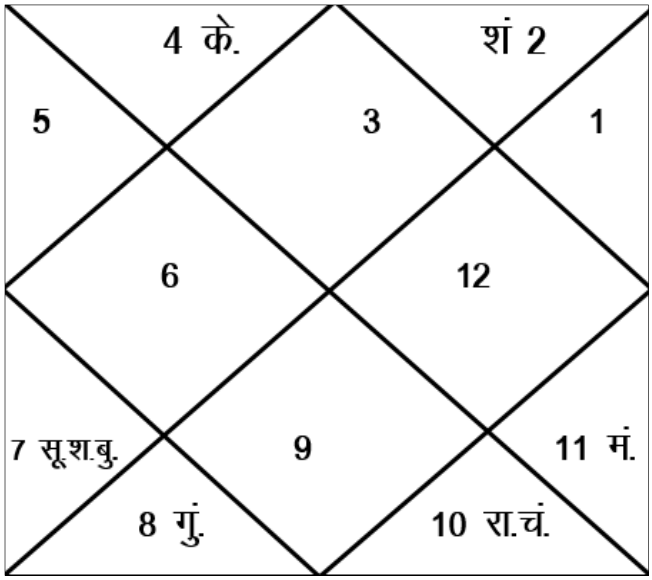

जन्मतिथि – 26/10/1971
जन्म समय 11/30 रात्रि
जन्मस्थान – मुम्बइ

प्रस्तुत कुण्डली में तृतीयेश सूर्य अपने से एकादक में है, पंचम भाव में तथा एकादशेश मंगल भी अपने से एकादश में शत्रु की राशि में है, जिसके फलस्वरूप जातका कर्णरोग से पीड़ित है। दूसरा योग बृहस्पति सप्तमेश होकर षष्ठ भाव में मंगल के घर में बैठा है, जो कि बधिर योग बना रहा है।

धर्मायसहजसुतगाः पापाः सौभ्यैर्न वीक्षितो जन्तोः
श्रवणविनाशं कुर्यः सप्तमसंस्थाश्च दन्तानाम्।।
नवम तृतीय धीयुता न च सौभ्यैंशुभा निरीक्षिताः।
नियमाच्छर्वणोपद्यातदा रदवैकृत्यकराश्चं सप्तमे।।

इस प्रकार उकन कुण्डलियों से ज्योतिष शास्त्र में वर्णित विभिन्न योगों को फलित होते देखा भी जा सकता है। अतः देवज्ञ उक्त योगों का ध्यान करते हुए एवं अन्य ग्रहों की स्थिति एवं दृष्टि के आधार पर फलादेश करें।

सन्दर्भ

1. सुश्रुतसंहिता –सूत्रास्थानम् 25/4/10
2. प्रश्न 9/3
3. प्रश्न 9/3
4. प्रश्न 9/6
5. चरकसंहिता–उत्तरातंत्र अ. 40
6. सुश्रुतसंहित उत्तरतंत्र अ. 40/163
7. प्रश्नमार्ग – अ. 13–श्लोक 29
8. आचार्यविदेह
9. वीसिहिवलोक पृ.सं.
10. वीसिंहावलोक पृ.सं.
11. तत्रैव
12. वीसिहिावलोक पृसं. 575
13. सुश्रुतसंहित उत्तरतंत्र अ. 20
14. दैवज्ञभरणमः 11/4
15. तत्रैव
16. जातक तत्व प्रर्कीण तत्व सू. 279–85
17. जातकतत्व स. 282
18. वृहज्जातक अ. 23 शलेक. 11
19. जातकपारिजात अ. 11 श्लोक 67
20. सारावली अ. 30 श्लोक 14
21. जातकपारिजात अ. 11
22. जातक तत्व–प्रर्कीण तत्व सू. 286–88
23. तत्रैव
24. तत्रैव
25. जैमिनीसूत्र अ. पा. 2 सू. 32
26. जातकपारिजात अ. 6 श्लोक 66
27. जातकपारिजात अ. 6 श्लोक 67
28. बीर सिहांसनवलोक पृ. सं. 582
29. गद्वली प्रकरण श्लो. 17–20
30. जातकपारिजात अ. 6 श्लो. 100
31. तत्रैव